Paper IV

Sociology of Deviance

Unit III

Topic- C.H. Cooley

औपचारिकता का सिद्धान्त

Theory of Formalism (C.H. Cooley)

By

Dr. Archana Mishra

औपचारिकता का सिद्धांत

Theory of Formalism (C.H. Cooley)

कूले ने अपनी पुस्तक "Social Organization और उससे पहले "Human Nature and the social order" के द्वारा अमरीकी समाजशास्त्री के रूप में अपनी विद्धता स्थापित कर चुके थे। इन्होंने अमेरिकी संस्कृति संस्कृति की समस्याओं को ही न केवल उचित रूप में विश्लेषित किया बल्कि समाजशास्त्र में महत्वपूर्ण योगदान भी दिया है। कूले 1864 से 1929 ई० के मध्य जीवित रहे। वह अमेरिकी समाज में प्रजातन्त्र या ऐसे समय में राष्ट्रीय विचार एक सहानुभूति पूर्ण आलोचना के रूप में प्रकट हुए। समनर के अतिरिक्त समाजशास्त्र के क्षेत्र में वार्ड स्माल तथा कूले के गुट ने बढ़ते हुए व्यक्तिवाद के विषय में विचार रखा।

औपचारिकता के अर्न्तर्गत कूले ने अमरीली समाज में बढ़ती हुई कृत्रिम व्यवस्था की बुराइयों की ओर नवीन ढंग से प्रकाश डाला है ।

औपचारिकता का साधारण अर्थ एक नियमानुकूलता क्या नियमनिष्ठ की व्यवस्था से है। कोई भी समाज ऐसा नहीं जो नियमों से परे है परन्तु जब इन नियमों का रूप आन्तरिक न होकर बाहरी या दिखावटी हो जाता है तो ऐसी स्थिति औपचारिकरणक की होती है। ठूले ने औपचारिकता को विहारन से पूर्व की स्थिति को बताते हुए एक समस्या रूप में लिया है उसके अनुसार समाज के प्रत् दक्षेत्र में औपचारिकता की समस्या है।

औपचारिकता को अवस्था में विचार कृत्रिम हो जाते है क्योंकि व्यक्ति कृत्रिम रूप में सोचता है। परिणामतः कूले के दृष्टिकोण से प्राथमिक समूहो के आदर्शों की समाज में अव्यहारिकता से व्यक्ति के जीवन में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का लोप हो जाता है। मनुष्य पूर्ण रूप से संस्थाओं का दास बन जाता है जिसके फलस्वरूप वह संस्था द्वारा निर्देशित आदर्शों को पूरा करता है। चाहे उससे कोई उद्देश्य पूरा हो जाता है या नहीं । वस्तुतः स्वस्थ सामाजिक जीवन के लिए कूले के अनुसार व्यक्ति को विवेक, स्वतंत्रता और चेतना को स्वभाविक रूप में प्रयोग करना चाहिए, मनुष्य को रूढ़ियों तथा परम्पराओं का दास न बनकर उनका मूल्यांकन

करते हुए हमें मार्ग पर को बढ़ना चाहिए। तभी समाज को प्रगति की एक स्वस्थ दिशा प्राप्त हो सकती है।

औपचारिकता की विवेचना कूले के द्वारा दिये गए प्राथमिक तथा द्वितीय समूह की विशेषताओं के विवेचन के बिना अपूर्ण होगा। प्राथमिक समूह के सम्बन्ध में फूले ने कहा कि मानवीय ज्ञान इसी समूह से प्राप्त किया जाता है तथा सामाजिक आदर्शों जैसे– त्याग, सहानुभूति आदि भावनाओं का जन्म इसी समूह के आधार पर ही होता है। प्राथमिक समूह का विवेचन करते हुए कूले ने इसके लक्षणों को स्पष्ट किया है कि इनका आकार छोटा होता है। इनमें संचार आसान होता है तथा इनमें सदस्य कम होने के कारण घनिष्ठ सम्बन्ध पाये जाते है। पारस्परिक सहयोग सम्बन्ध तथा समानता इस समूह की विशेषता होती हैं। कूले के अनुसार जिन समूहों में सामान्य रूप से सरलता नहीं होती वहां पायी जाने वाली घनिष्ठता घटती जाती है। इसी आधार पर कूले द्वितीय समूह का निवेचन करता है। उसके अनुसार इस समूह में हम की भावना होती है, इनका आकार बड़ा होता है, जिसके कारण संचार में बांधा उत्पन्न होती है (5) सम्बंधो में धनिष्ठता कम पायी जाती है (9) अप्रत्यक्ष सम्बन्ध होते हैं। सम्बन्ध में कृत्रिमता होती है तथा उद्देश्यों में सीमितता पाई जाती है।

इस प्रकार कूले प्राथमिक समूह के आधार पर श्रद्धा, सत्य, दया नियमबद्धता या नैतिक आदर्शो आदि के महत्व को दर्शाते हुए व्याख्या करता है उनके अनुसार प्राथमिक समूहों के आदर्श, दर्शनशास्त्र की देन नहीं है बल्कि इसकी उत्पत्ति परिवार ऐसे समूहों के सामाजिक जीवन में सामान्य रूप से होती है।

कूले के अनुसार जब प्राथमिक आदर्श (जो प्राथमिक समूह के जीवन से उत्पन्न होते है।) के आधार सम्पूर्ण समाज को व्यवस्थित करने की चेष्ठा की जाती है तो एक सामाजिक व्यवस्था का प्रादुर्भाव होता है। इस समस्या को समाजशास्त्री व्यवस्थायें औपचारिकता के नाम से सम्बोधित किया गया । अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जब प्राथमिक आदर्शों को बड़े पैमाने पर समाज में लागू किया जाता है तथा औपचारिता का व्यवहारिक रूप जाता है कि प्राथमिक आदर्शो से घनिष्ठता होने के कारण व्यक्ति यदि इनका त्याग करना भी चाहे तो

नहीं कर सकता। ऐसी परिस्थिति में यह होता है कि व्यक्ति के केवल इन आदर्शों का प्रदर्शन दी किया करते है। इस रूप में औपचारिकता की समस्या का अर्थ स्वाभाविकता का नष्ट होना है। या स्वतंत्रता की भावना का लोप हो जाना है। कुले के अनुसार औपचारिकता में व्यक्ति आँख बन्द करके चलता है और जब यह पूर्ण रूप से में विकसित हो जाती है तो सामाजिक संरचना में विघटन प्रारम्भ हो जाता है।

औपचारिकता की समस्यायें

कूले के अनुसार जब प्राथमिक आदर्शों के आधार पर सामाजिक संगठन को बनाने की चेष्टा की जाती है तो समाज अपने उद्देश्य को पाने में असफल हो जाता है जिसके कारण समाज में संगठन का अभाव होने लगता है। इस अभाव के निम्नलिखित तत्व कारण बन जाते हैं –

1. संचार की कमी

प्राथमिक आदर्शों के आधार पर समाज को संगठित करने की चेष्टा संचार में कमी होने के कारण असफल हो जाता है क्योंकि प्रत्यक्ष सम्बन्ध न होने के कारण संचार कम होता है। अतः जिसके आदर्शों को एक दूसरे तक अभाव में प्राथमिक पहुँचाने में कठिनाई होती है।

2. कृत्रिम घटनाएँ

जब इन आदशों के संचार में कठिनाई होती है तो यह आदर्श कृत्रिम घटनाओं का रूप धारण कर लेते हैं। ऐसी परिस्थिति में यह घटनाएं बुराइयों का रूप ले लेती है। और व्यक्ति इनके आधार पर एक दूसरे के दमन करने का प्रयत्न करते हैं। जिसके परिणाम में वैयक्तिक स्वतन्त्रता, पारस्परिक तथा उत्पादन शक्ति का लोप हो जाता है।

3. सहानुभूति की भावना का लोप

औपचारिकता के अन्तर्गत व्यक्ति सहानुभूति पूर्ण जीवन नहीं व्यतीत कर पाता । जब समाज का संगठन प्राथमिक आदर्शों के आधार पर व्यापक रूप में होता है तो सहानुभूति की

भावना छोटे समूहों में स्वाभाविक रूप में पायी जाती है तथा व्यक्ति व्यापक समाज में संवेगों को छोड़कर तर्क के आधार पर प्रत्येक वस्तु को मूल्यांकित करने का प्रयास करता है, अतः कूले सहानुभूति देने के आभाव में असंगठित व्यक्तित्व, असमानता, अन्याय की दिशा में प्रेरणा, नैतिक भावों के अभाव को परिणाम के रूप में बताता है। उसके अनुसार ऐसी अवस्था में व्यक्ति का मुस्तिष्क पिंजरे मे सीमित हो जाता है। यहाँ विवेक पूर्ण ढंग से गलतियों के –विवरण का कोई प्रयास नहीं किया जाता है।

4. विचारधारा की शक्ति में लोप

समाज में प्रत्येक संगठन का उद्देश्य मानव प्रकृति को स्पष्ट करना होता हैं और यह स्पष्टीकरण उस संगठन में प्रतीकों की प्रणाली द्वारा हुआ होता है जो कि उस संगठन के विचार चक्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह प्रक्रिया आगे चलकर बहुत तीव्र गति से विभाजित हो जाती हैं। और तब विचार भी विभक्त हो जाते है। एक ऐसी अवस्था में संगठन के प्रतीक रिक्त– कोष के समान होते हैं। इस रूप में प्रथा, अभिमान या स्वार्थ बने रह सकते है। परन्तु इसमें वास्तविकता का प्रतिपादन नहीं होता, तब औपचारिकता इस रूप में मनोवैज्ञानिक अल्पमूल्य हो जाती है तथा मानव मस्तिष्क के सम्मुख बिना नवीन विचार या भावों के संचालित होती है।

औपचारिकता तथा व्यक्तिवाद

औपचारिकता व्यक्ति वाद के समान प्रकृति में अधिक निकट है। औपचारिकता की कृत्रिमता श्रेष्ठ है तो व्यक्तिवाद की कृतिमता खण्डों में बटी है पर दोनों ही मानव प्रकृति तथा उसके साधनों के बीच संतुलन के विरोध में है। व्यक्तिवाद प्राथमिक रूप से भावनाओं के पृथक्कीरण द्वारा जाना जाता है। जहाँ व्यक्ति व्यापक समाज मे स्वार्थों को नहीं लेता बल्कि अपनी वैयक्तिक इच्छाओं को पूरा करने तो लिए अपने स्वभाव को नैतिक पतन की ओर ले जाता है व्यक्तिवाद के विकास में स्वभाविक रूप से ऐसा देखने को मिलता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने सम्मुख इस प्रकार के प्रश्न रखता है जैसे कि क्यों दूसरे धनी है और वह निर्धन? क्यों ये सब सहन करे ? क्यो वह यह कार्य करें यह जिसे यह नहीं चाहता ? क्यों वह ईमानदार है,

जबकि दूसरे बेइमान है? क्यों वह पत्नी के लिए विश्वास पात्र हो. जबकि दोनो प्रसन्न नहीं है? वह भगवान पर विश्वास करे जबकि सम्पूर्ण जगत बुरा है? ऐसे प्रश्न उसके मस्तिष्क में आते हैं जिनका कोई उत्तर नहीं है तथा जिनके परिणाम में विद्रोह, क्रूरता, कठोरता, विवाह विच्छेद तथा आत्म हत्याएं होती है। स्पष्ट है कि औपचारिकता के साथ व्यक्ति स्वभाविक रूप में सहनशील नहीं होता। मानव मस्तिष्क औपचारिक प्रणाली के विचारों को रखता है। और यदि उसकी किसी प्रकार की बाच्या दिखाई देती है तो वह विचलन के लिये सहनशील नही रह पाता, अत्यधिक अतार्किक और निरर्थक हो जाता है।

इस प्रकार कोई औपचारिक प्रणाली स्थापित हो जाती है तो यह व्यक्ति के मस्तिष्क को संकीर्ण विधार तथा संकुरित सुझाव वाला बना देती है परन्तु विचारों में परिवर्तन से प्राचीन प्रणाली को नवीन प्रणाली के द्वारा केवल इस रूप में हटाया जा सकता है। जबकि व्यक्ति ऐसे अभाव तथा विचार रखते हो जो कि शासित व्यवस्था से संघर्ष करते हुए हो और यदि ऐसा नहीं है तो प्राचीन प्रकार की प्रणाली स्वंय को असीमित रूप में पुनः उत्पन्न करती है। इस रूप में व्यक्ति पौधे की पत्तियों के समान होते हैं जो कि पतझड़ में गिर जाते हैं और वसंत में पुनः स्थापित हो जाते हो है।

स्पष्ट है कि व्यक्तिल पर औपचारिकता के प्रभाव उच्च जीवन के आदर्शों को दरिद्र बना देती है। और जीवन को रूचि शून्य तथा मानव को न्यूनतम प्रकार की सामान्य प्रकृति जैसे इन्द्रिय सुख और आत्म संतोष के लिए छोड़ देते हैं। इस रूप में कहा जा सकता है कि औपचारिक धर्म तथा औपचारिक स्वतन्त्रता सहानुभूति की भावना के विरुद्ध कुख्यात है और दुष्टता व निर्दयता का प्रतीक है। उदाहरणार्थ भारतीय धर्म के सम्बन्ध में औपचारिकता की इस प्रणाली को देखा जा सकता है। हिन्दू धर्म में शिशु को बाल्य काल से ही से संस्कारो तथा अधिकारों द्वारा उस पर न मिलने वाली स्थिर प्रणाली की छाप लगा दी जाती है यह प्रणाली उसके जीवन के सूक्ष्म विवरणों को नियंत्रित करती हैं क्या उसके और उसके माता पिता के लिए जीवन से सम्बन्धित निर्णयों के लिए छोटा सा चुनाव भी छोड़ती है।

औपचारिकता तथा विघटन

विघटन व्यक्ति के मस्तिष्क में अतिरिचाता के रूप में प्रकट होता है। और भक्ति तथा श्रद्धा के बाड्ह्यतामूलक के संचालन से जहाँ चरित्र के व्यापक नियम न हो विद्यटन स्पष्ट रूप में दिखाई देता है। विघटन का एक पक्ष यह भी है कि व्यक्ति को चरित्र के व्यापक नियमों की कमी के कारण उसको आश्रय तथा उत्तेजना मिलती है कि वह स्वतंत्र रुप में क्रियाओं को व्यापक ढंग से कर सके और सामाजिक आदर्शों के न होने के कारण नीचे स्तर पर अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए असभ्य इच्छाओं को पूरा कर सके इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि औपचारिकता तथा सिद्धान्तों के संघर्ष से व्यक्ति का कभी कभी स्वतंत्र विकास होता है। बहुदा ऐसा देखा गया है कि महान व्यक्तित्व विघटन के समय ही प्रकट हुए है। इससे यह प्रतीत होता है। यह संघर्ष एक समस्या के रूप में समाज में विद्यमान रहता है। उदाहरणार्थ इटली के कला कौशल काल जहाँ राजनैतिक विघटन था तथा धार्मिक नियंत्रण समाप्त हो रहा था । ऐसी व्यवस्था समाप्त हो रहे थी ऐसी व्यवस्था ने महान चितकारों मूर्तिकारों को जन्म दिया और बहुत से महान तथा व्यक्तित्व साहित्य में अपना योगदान दे गये। ऐसे समय में सदैव यह प्रतीत होता है कि इन सभी महान व्यक्तियों का दृष्टिकोण एक विषय पर अवश्य केन्द्रित रहा है। यह वह परम्परागत विकास से हटकर एक नवीन विकास की दिशा को रखा जाए। और यह बात उस महाने व्यक्ति के लिए कोई वैयक्तिक घटना नहीं होती है ऐसे में औपचारिकता तथा विघटन की दूरी प्रतीत होती है, परन्तु वास्तव में यह निकट सम्बन्ध रखते हैं। औपचारिकता प्राकृतिक रूप में इन्द्रिय सुख, स्वार्थ, लालसा और विघटन के दूसरे तत्वों के साथ है क्योंकि औपचारिक संस्थाएं व्यक्ति के स्वंय के साथ नहीं होती बल्कि उस पर बाह्य रूप से अपना नियन्त्रण रखती है। परिणाम में व्यक्ति नियमों की अवहेलना वाला और विद्रोही व्यवहार हो जाता है। उदाहरर्णाथ पाठशालाओं में नियमित पद्धति के अनुसार कार्यक्रम होते हैं जहाँ के व्यापक रूप से अल्पमूल्य कार्य के लिए उपाय किये जाते है तथा उस पर बल दिया जाता है कि उन्हें प्रयोग में लाया जाए जैसे– साहित्य चाहे वह प्राचीन हो या आधुनिक अध्यापक के पाठन के लिए विशेष विषय निश्चित होते हैं। जिसकी स्थिरता अध्यापक को बनाए रखनी पड़ती है परन्तु ऐसी स्थिति में भावना जो कि साहित्य की आत्मा होती हैं। उसका संचार नहीं होता यदि कोई अध्यापक इन भावनाओं को निकट रूप से अनुभव करता है तो परीक्षा के दृष्टिकोण से उसे हतोत्साहन मिलता है इसी प्रकार समाज की सम्पूर्ण व्यवस्था

इस अर्थ में औपचारिक होती है कि मानव आँख बन्द करके एक मशीन की तरह कार्य करता है।

जो कि मानव प्रकृति के विरुद्ध हानिकारक सिद्ध होता है।

एक और महत्वपूर्ण उदाहरण भारतीय सन्दर्भ में औपचारिकता के विवेचन में लिया जा सकता है। इन्दिरा गाँधी द्वारा लगाये गये आपातकालीन समय की व्यवस्था जो कि बहुत दृढ़ थी तब शासन करने वाले व्यक्ति निर्धारित और इन्द्रिय सुख को प्राप्त करने वाले हो गये थे, इस काल का प्रारम्भ सामाजिक विघटन को रोकने के लिए किया गया था, परन्तु वास्तव में जो समस्याएं थी उनका निराकरण न हो सका क्योकि इस समय की सम्पूर्ण संस्थाओं का बाहरी रूप समाज कल्याण तथा समस्याओं के समाधान के लिए था परन्तु वास्तविकता यह थी इसमें समस्याओं व्यक्तिगत स्वार्थ निहित थे। सम्पूर्ण संस्थायें मानव प्रकृति के विरुद्ध थी । विशेषकर ऐसे समाज में जहाँ धर्म तथा जाति जिसकी धरती में निहित हो, और अपना कठोर नियंत्रण व्यक्ति पर रखते हो वहाँ परिवार नियोजन को कठोर शासन द्वारा सफल बनाने का प्रयत्न चुनाव के परिणाम में एक विद्रोह के रूप में प्रकट हुआ, ऐसा नहीं है कि वह विद्रोह कोई व्यापक सामाजिक अधिक परिवर्तन लाया हो बल्कि यह कहा जा सकता है कि अवसर प्राप्त होने पर औपचारिकता के विरुद्ध भारतीय समाज ने अपनी प्रकृति को स्पष्ट किया हैं। भारतीय समाज को यदि अमरीकी तथा यूरोपीय समाजों की तुलना में देखा जाये तो यह प्रतीत होता है कि यूरोपीय समाजों में फैली हुई औपचारिकता में अन्तर है। यहां औपचारिकताएएक शक्तिशाली शक्ति के रूप में अपना अस्तित्व रखती हैं। जहाँ सामान्य विचारों की अवस्था अनुकूल रहती है क्योंकि सम्पूर्ण समाज कल्याणकारी व्यवस्था को पाने के लिए प्रयत्न करते हैं और लोग अधिक शक्तिशाली तथा लचीले संगठन को चाहते है। परंतु भारतीय समाज इस रूप में भिन्न है कि यह अधिकतर ग्रामीण जीवन पर निर्भर करता है। यहाँ का ग्रामीण जीवन अब भी किसी सीमा तक अपने में प्राथमिक आदर्शों को समेटे हुए हैं। जिसके कारण औपचारिकता के वे गुण जो कि औद्योगिकरण तथा आधुनिकरण के साथ नगरीय जीवन मे दिखाई देते है यहाँ नही मिलते परन्तु ऐसा नहीं है कि आप में औचारिकता के प्रभाव ग्रामीण जीवन पर नहीं पड़ते, कहा जा सकता है कि कोई भी सामाजिक संरचना ऐसी नहीं है

जो इसके प्रभाव से मुक्त हो । भारतीय सन्दर्भ में इसका रूप नहीं मिलता जो पश्चिमी देशों में है। बल्कि औपचारिकता की समस्या भारतीय व्यवस्था के सभी क्षेत्रो मे मिलती हैं व्यवस्था का बाह्य रूप तो संगठित दिखाई देता है। परन्तु बास्तब में इसके अन्त जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जो औचारिक न होता हो । यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति इन्द्रिय सुख, स्वार्थ से जकड़ा हुआ है। ऐसी दशा में यहां की प्रत्येक संस्था का रूप मानव कल्याण के लिए हैं परन्तु वास्तव में सम्पूर्ण प्रकार मानव प्रकृति के विरुद्ध है।

Referecne Books :

1- अपराधशास्त्र by –राम आहूजा
2- अपराधशास्त्र by – डॉ0 धर्मवीर महाजन
डॉ0 कमलेश महाजन